Dr. Sudhir Kumar Singh

Principal

Rohtas mahila college Sasaram

U.G. notes B.A. (Hons.) Part 1

Paper 1st (Samajhshastra k Siddhant)

Topic- Parivaar

परिवार का अर्थ, परिभाषा, प्रकार, तत्व एवं कार्य

परिवार सार्वभौमिक होते हैं और इसमें विवाहित पुरूष, महिला व उनके बच्चे शामिल होते हैं। परिवार का अर्थ है कुछ संबंधित लोगों को समूह जो एक ही घर में रहते हैं। परिवार के सदस्य, परिवार से जन्म, विवाह व गोद लिये जाने से संबंधित होते हैं। इससे परिवार की तीन विशेषताएं पता चलती हैं।

ये हैं – दम्पति को विवाह करके पति पत्नी का नैतिक दर्जा प्राप्त होता है और वे शारीरिक संबंध भी स्थापित करते हैं। दूसरा, परिवार का अर्थ है इसके सभी सदस्यों के लिये एक ही आवासीय स्थान होना। निसन्देह, ऐसा भी देखा गया है कि कभी-कभी परिवार के एक या अधिक सदस्यों को अस्थाई रूप से काम के लिये घर से दूर भी रहना पड़ सकता है। उसी प्रकार वृद्ध माँ-बाप, चाचा-ताऊ, और उनके बच्चे भी परिवार को हिस्सा होते हैं।

तीसरा, परिवार में न केवल विवाहित दम्पति होते हैं बल्कि बच्चे भी होते हैं – स्वयं के या दत्तक (गोद लिये गये)। अपने बच्चों को दम्पति जन्म देते हैं और दत्तक बच्चे दम्पति द्वारा कानूनन गोद लिये जाते हैं। स्पष्टतया, परिवार समाज की पहली संगठित इकाई है।

परिवार की परिभाषा देना कठिन है। यह इसलिए कि दुनियाभर में परिवार का कोई एक ही अर्थ लिया जाता हो ऐसा नहीं है। ऐसे समाज है जहां एक पति-पत्नी परिवार ही पाये जाते है। कुछ समाजों में बहुपत्नी परिवार होते है और कुछ में बहु पति। संरचना की दृष्टि से केन्द्रीय परिवार होते है। भारत या जापान ऐसे एशिया के देशों में विस्तृत या संयुक्त परिवार होते है। परिवार की ऐसी कोई परिभाषा देना जो सभी समाजों पर समान रूप से लागू हो जायें, बहुत कठिन है।

परिवार के प्रकार

संयुक्त परिवार

हमारे देश में एक इकाई के रूप में परिवार का बहुत महत्त्व माना जाता है। भारतीय परिवार बहुधा स्थिर व बाल केन्द्रित होते हैं। आइए जानते हैं कि दोनों संयुक्त तथा एकल परिवारों की क्या-क्या विशेषताएं होती हैं।

संयुक्त परिवार कुछ एकल परिवारों से मिलकर बनता है और परिणामस्वरूप यह काफी बड़ा होता है। यह पति-पत्नी, उनकी अविवाहित लड़कियों, विवाहित लड़कों, उनकी पत्नियों व बच्चों से मिलकर बनता है। यह एक या दो पीढ़ियों के लोगों का समूह है, जो साथ रहते हैं। संयुक्त परिवार की कुछ प्रारूपिक विशेषताएं हैं-

सभी सदस्य एक ही छत के नीचे रहते हैं।

सभी सदस्यों की सांझी रसोई होती है।

सभी सदस्य परिवार की संपत्ति के हिस्सेदार होते हैं। संयुक्त परिवार का सबसे बड़ा पुरूष परिवार का वित्त संचालन व संपत्ति देखता है। यानि परिवार का खर्च एक ही वित्त स्रोत से चलता है।

सभी सदस्य पारिवारिक घटनाओं, त्यौहारों व धार्मिक उत्सवों में एक साथ शामिल होते हैं।

परिवार की बेटियाँ शादी के बाद अपने पति के घर चली जाती हैं जबकि बेटे घर में ही अपनी पत्नियों व बच्चों के साथ रहते हैं।

संयुक्त परिवार में निर्णय घर के सबसे बड़े पुरूष सदस्य द्वारा लिये जाते हैं। घर की सबसे बड़ी महिला भी निर्णय लेने का कार्य कर सकती है, परंतु अप्रत्यक्ष रूप से।

परम्परागत रूप से संयुक्त परिवार ही हमारे समाज में पाये जाते थे। अब परिवर्तन आ रहा है विशेषकर शहरी क्षेत्रों में। परंतु व्यापारिक व कृषि प्रधान घरानों में अभी भी संयुक्त परिवार की प्रथा जारी है।

संयुक्त परिवार के लाभ

यह परिवार के सदस्यों को मिलनसार बनाता है। काम, विशेषकर कृषि कार्य को बांट कर किया जा सकता है।

यह परिवार में बूढ़े, असहाय व बेरोजगारों की देखभाल करता है।

छोटे बच्चों का लालन-पालन भली-भाँति होता है, विशेषकर जब दोनों माता-पिता काम काजी हों।

माता या पिता की मृत्यु हो जाने पर बच्चे को संयुक्त परिवार में पूरा भावानात्मक व आर्थिक सहारा मिलता है।

संयुक्त परिवार में आर्थिक सुरक्षा अधिक रहती है। संयुक्त परिवार की कुछ समस्यायें भी हैं-

कभी-कभी महिलाओं को कम सम्मान दिया जाता है।

अक्सर सदस्यों के बीच संपत्ति को लेकर या किसी व्यापार को लेकर विवाद उठ खड़ा होता है।

कुछ महिलाओं को घर का सारा कार्य करना पड़ता है। उनको अपना व्यक्तित्व निखारने के लिये बहुत कम समय व अवसर मिलता है।

एकल परिवार –

साधारणतया यह एक छोटी इकाई है जिसमें पति-पत्नी व उनके अविवाहित बच्चे रहते हैं। कभी-कभार पति का अविवाहित भाई या बहन भी उनके साथ रह सकते हैं।

तब यह एक विस्तृत परिवार होगा। एकल परिवार में रहने के कुछ लाभ हैं-

एकल परिवार के सदस्य साधारणतया अधिक आत्म निर्भर होते हैं और वे आत्मविश्वास से भरे हुये व किसी भी काम में पहल

करने में सक्षम होते हैं।

एकल परिवारों में बच्चों को स्वयं निर्णय लेने के लिये उत्साहित किया जाता है जिससे उनका आत्मविश्वास बढ़ता है।

सदस्यों के बीच गहरा भावनात्मक लगाव विकसित होता है। ऐसा अधिक एकान्त व आपसी मेल-मिलाप के अवसर मिलने के कारण संभव होता है जो एकल परिवारों में भली-भाँति उपलब्ध होते हैं।

ऐसा देखा गया है कि जहाँ कोई समाज अधिक औद्योगिक व शहरी बन जाता है, वहाँ एकल परिवार होने की संभावना बढ़ जाती है। बड़े शहरों में एकल परिवारों की अधिकता का एक प्रमुख कारण आवसीय समस्या है। बड़े परिवार को रहने के लिए जगह भी ज्यादा चाहिए। यदि परिवारों को सुविधापूर्ण ढंग से रहना हो तो उनके पास एकल परिवार में रहने के अलावा और कोई चारा नहीं है।

एकल परिवारों की समस्यायें-

एकल परिवारों में नवविवाहित दम्पति को किसी बुजुर्ग का सहारा नहीं होता। उन्हें सलाह देने के लिये कोई भी अनुभवी व्यक्ति उपलब्ध नहीं होता। जब माता-पिता दोनों ही काम काजी हों तो बच्चों की देखभाल के लिये कोई नहीं रहता।

बुरे समय में परिवार को कोई आर्थिक व भावनात्मक सहारा नहीं रहता। एकल परिवारों में सामंजस्य, मिलजुल कर काम करना व सहयोग के मूल्य मुश्किल से ही सीखने को मिलते हैं।

परिवार के मुख्य तत्व

परिवार की संस्था सार्वभौमिक है लेकिन यह भी सही है कि सभी समाजों में परिवार एक जैसे नहीं है। कहीं बहुपत्नी परिवार है, तो कहीं बहुपति। कहीं पितृवंशीय परिवार हैं और कहीं मातृवंशीय। इस विभिन्नता के होते हुए भी बहुसंख्यक परिवार एक पति -पत्नी परिवार हैं। यहां परिवार में सामान्य रूप से पाये जाने वाले लक्षणों का उल्लेख करेंगे –

यौन सम्बन्ध

सामान्यता सभी समाजों में परिवा में यौन संबंध अनिवार्य रूप से पाये जाते है। यह अवश्य है कि कभी-कभी पत्नी या पति की मौत के कारण, विवाह-विच्छेद होने से यौन संबंध नहीं होते। ऐसी अवस्था में पिता या माता ही परिवार को बनाते है उस अपवाद के होते हुए भी परिवार में यौन संबंधों को समाज द्वारा वैधता प्राप्त होती है।

प्रजनन

परिवार एक बहुत बड़ा लक्षण सन्तानोत्पत्ति है। दुनियाभर के लोगों की यह मान्यता रही है कि यदि प्रजनन न किया जाये तो समाज की निरन्तरता समाप्त हो जायेगी। हिन्दुओं में तो अविवाहित पुरुष या स्त्री को स्वर्ग प्राप्त नहीं होता। इसी कारण अविवाहित व्यक्ति का मरणोपरान्त दाह संस्कार के पहले किसी पेड़-पौधे, पत्थर से विवाह कर दिया जाता है। एक दूसरा तथ्य यूरोप व अमरीका के समाजों में हमारे सामने आया है। इन समाजों में सन्तानोत्पति को परिवार का उद्देश्य नहीं समझा जाता। अब ऐसे दम्पतियों की वृद्धि हो रही है जो यौन संबंध तो रखना चाहते है लेकिन संतान को जन्म नहीं देना चाहते।

आर्थिक बंधन

परिवार केवल यौन संबंधों की स्वीकृति से ही नहीं बनते। परिवार के सदस्यों को एक सूत्र में बांधे रखने का काम आर्थिक बंधन करते हैं। लेवी स्ट्राऊस ने तो आग्रहपूर्वक कहा है कि आदिम समाजों का बुनियादी आधार आर्थिक सम्बन्ध होते है।

दीर्घकालीन समूह

समाज के अगणित समूहों में परिवार ऐसा समूह है जो प्राथमिक, निश्चित और दीर्घकालीन होता है। इतिहास के प्रत्येक युग में, समाज कैसा भी हो, उसमें समूह अवश्य होते हैं और इधर मनुष्य अपने जन्म से लेकर मृत्यु तक परिवार की सीमा में बंधा रहता है। व्यक्ति के जीवन में कई समूह आते हैं, धीरे-धीरे करके ये समूह चले जाते हैं लेकिन परिवार ही ऐसा समूह है जो इसे कभी छोड़ता नहीं है। यही उसका दीर्घकाल है।

लालन-पालन

पशुओं की तुलना में मनुष्यों के संतान की निर्भरता परिवार पर बहुत अधिक होती है। परिवार ही बच्चों का पालन पोषण करता है; उन्हें शिक्षा-दीक्षा देता है और हमारे देश में तो परिवार ही शादी-ब्याह करवाता है और आर्थिक् स्वावलम्बन प्रदान करता है।

परिवार का आकार

शायद परिवार की बहुत बड़ी विशेषता उसका आकार है। सामान्यतया एक परिवार में पति-पत्नी के अतिरिक्त बच्चे होते है। कभी-कभी इन सदस्यों के अतिरिक्त परिवार में अन्य सदस्य भी होते हैं, ऐसे परिवारों को विस्तारित या संयुक्त परिवार कहते हैं। इन परिवारों में दो से अधिक पीढ़ियां रहती है।

भावनात्मक आधार

परिवार के सदस्यों में आर्थिक संबंधों के अतिरिक्त भावनात्मक संबंध भी होते हैं। हमारे यहां आई.पी. देसाई ने सौराष्ट्र के महुआ कस्बे का जो अध्ययन किया है उसमें उसकी एक प्राप्ति यह है कि परिवार के लोग कहीं भी रहें, कुछ भी कमायें, फिर भी ये सब सदस्य भावनात्मक रूप से एक दूसरे से जुड़े रहते हैं।

परिवार के कार्य

यह सुरक्षा प्रदान करता है। निश्चित रूप से परिवार नवजात शिशुओं व बच्चों, किशोरों, बीमारों और बुजुर्गों की सबसे अच्छी देखभाल करता है।

यह अपने सदस्यों को एक ऐसा भावनात्मक आधार देता है जो अन्यथा संभव नहीं। इस प्रकार की भावना बच्चों के स्वस्थ विकास के लिये अपरिहार्य है। दरअसल, परिवार एक प्राथमिक समूह है जो सदस्यों के बीच एक अंतरंगता व स्नेह के स्वतंत्रा प्रदर्शन की आज्ञा देता है।

यह अपने सदस्यों को शिक्षित करता है जो पारिवारिक परिवेश में जीवन जीना सीखते हैं। बच्चों को समाज के नियम सिखाये जाते हैं, और यह भी कि अन्य लोगों के साथ किस प्रकार मेल-जोल रखना है व बुजुर्गों के प्रति आदर व उनकी आज्ञा का पालन किस तरह से करना है आदि।

यह आर्थिक सुरक्षा प्रदान करता है। परिवार के प्रत्येक सदस्य की आधारभूत जरूरतें जैसे भोजन, आवास व कपड़ा उपलब्ध कराया जाता है। वे घर के कार्य व जिम्मेदारियों में हाथ बँटाते हैं।

यह मनोरंजन का स्रोत भी है। परिवार प्रसन्नता का स्रोत हो सकता है जहाँ सभी सदस्य एक दूसरे से बात-चीत कर सकते हैं, खेल सकते हैं व भिन्न-भिन्न गतिविधियाँ कर सकते हैं। ये गतिविधियाँ घरेलू कार्य से लेकर त्यौहार या फिर जन्म, सगाई व विवाह आदि की हो सकती हैं।

परिवार बच्चों के समाजीकरण का कार्य भी करता है। माता-पिता बच्चों को लोगों के साथ मिल जुलकर रहने, प्रेम करने, हिस्सेदारी, जरूरत के समय मदद व जिम्मेदारी निर्वहन का पाठ भी पढ़ाते हैं। परिवार बच्चों में मनोवृत्तियों व मूल्यों का पोषण करता है और उनकी आदतों को प्रभावित करता है। परिवारों में ही परम्परागत कौशल सिखाये जाते हैं। परिवार ही अपने नन्हे सदस्यों को स्कूल में औप़चारिक शिक्षा के लिये तैयार करता है।

परिवार यौन संबंधी कार्य भी करता है जो प्रत्येक प्राणी की जैविक आवश्यकता है। आप जानते ही हैं परिवार का अर्थ विवाह है और सभी समाज विवाह के बाद स्त्राी पुरूष के बीच यौन संबंधों को स्वीकृति देते हैं।

विवाहित पुरूष व महिला के शारीरिक संबंधों के फलस्वरूप परिवार में प्रजनन का कार्य भी पूर्ण होता है। जन्म लेने वाले बच्चे समाज के भविष्य के सदस्य होते हैं। आप अपने परिवार को देखकर बताइए कि उपरोक्त सभी कार्य पूरे हो रहे हैं या नहीं, आपका उत्तर शायद 'हाँ' ही होगा। आपने देखा होगा कि कुछ परिवार छोटे होते हैं तो कुछ बहुत बड़े होते हैं। बिल्कुल सही हैं आप। आइए, अब देखते हैं कि हमारे आस-पास कितने प्रकार के परिवार हैं।

संयुक्त परिवार के पतन के कारण एवं उसके परिणाम

परम्परागत (संयुक्त) परिवार व्यवस्था के विखण्डन के लिए कौन-कौन से कारक उत्तरदायी हैं? परिवार में परिवर्तन किसी प्रभावों के एक समुच्चय (set of influences) से, नहीं आया है, और न यह सम्भव है कि इन कारकों में से किसी एक को प्राथमिकता दी जा सके। इस परिवर्तित होते हुए परिवार के लिए कई कारक उत्तरदायी है। औद्योगीकरण और उसके सार्वभौमिक मापदण्ड (universalistic criteria) जो निरन्तर विस्तृत क्षेत्र को प्रभावित कर रहे हैं, व्यक्तिवाद के आदर्श, समानता और आजादी, तथा वैकल्पिक जीवन पमदति की सम्भावना जैसे कारणों के सम्मिलन से ही "संक्रमणकालीन" (transitional) परिवार उदय हुआ है। मिल्टन सिंगर ने परिवार में परिवर्तन के लिए चार कारकों को उत्तरदायी माना है- आवासीय गतिशीलता, व्यावसायिक गतिशीलता, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा और द्रव्यीकरण (monetization)। इस लेखक ने भी ऐसे पांच कारकों को पहचान की है जिन्होंने परिवार को बहुत अधिक प्रभावित किया है। ये हैं- शिक्षा, नगरीकरण, औद्योगिकरण, विवाह संस्था में परिवर्तन ;आयु के सन्दर्भ मेंद्ध, तथा वैधानिक उपाय।

शिक्षा

शिक्षा ने परिवार को कई प्रकार से प्रभावित किया है। शिक्षा से न केवल व्यक्तियों की अभिवृनिया!, विश्वास, मूल्य एवं आदर्श विचारधाराएं बदली हैं, बल्कि इसने व्यक्तिवादिता की भावना को भी उत्पन्न किया है। भारत में शिक्षा न केवल पुरुषों में बढ़ रही है, बल्कि स्त्रियों में भी। पुरुष साक्षरता की दर में वृद्धि 1901 से 1931 तक 9.8 से 15.6 तक हुई, 1961 में 34.4, 1981 में 46.9 तथा 1991 में 55.07 तक हुई, जबकि स्त्रियों की साक्षरता दर में वृद्धि 1901 में 0.6 से 1931 में 2.9, 1961 में 13.0, 1981 में 24.8 तथा 1991 में 30.09 तक हुई। मान्यता प्राप्त शैक्षिक संस्थाओं की संख्या में वृद्धि 1951 में 2.31 लाख (2.09 लाख प्राथमिक विद्यालय, 13,600 मिडल और 8,300 सैकेण्डरी व हायर सैकेण्डरी विद्यालय) से 1985 में 7.55 लाख हो गई (5.28 लाख प्राथमिक, 13.4 लाख मिडल तथा 93,000 सैकेण्डरी व हायर सैकेण्डरी विद्यालय)। इसी अवधि में छात्रों के प्रवेश की संख्या 240 लाख से बढ़कर 1320 लाख हो गई। शिक्षा की दर में इस प्रकार की वृद्धि स्त्री पुरुषों के ने केवल जीवन-दर्शन में परिवर्तन करती है, बल्कि स्त्रियों को रोजगार के नये आयाम भी उपलब्ध कराती है। आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् स्त्रियां पारिवारिक मामलों में मताधिकार की मांग करता हैं और अपने ।पर किसी का भी प्रभुत्व स्वीकार करने से इन्कार करती हैं। यह दर्शाता है कि शिक्षा किस प्रकार पारिवारिक सम्बन्धों में परिवर्तन लाती है जो कि बाद में संरचनात्मक परिवर्तन भी लाती है। आई.पी. देसाई एवं एलिन रास ने भी शिक्षा व्यवस्था तथा परिवार व्यवस्था के पारस्परिक प्रभाव को इंगित किया है। देसाई ने बताया है कि शिक्षा संयुक्त परिवार के विरुद्ध दो प्रकार से कार्य करती है- प्रथम तो व्यक्तिवाद पर बल देकर यह लोगों के सामने परिवार के स्वरूप की वह धारणा प्रस्तुत करती है जो वर्तमान संयुक्त परिवार की धारणा के विपरीत है, तथा दूसरे यह लोगों को उन व्यवसायों के लिए तैयार करती है जो उनके अपने मूल स्थान में नहीं होते जिसके फलस्वरूप वे अपने पैतृक परिवार से पृथक होकर ऐसे क्षेत्रों में रहने लगते हैं जो उनकी शिक्षा के अनुकूल उन्हें व्यवसाय के अवसर प्रदान करते हैं। कालान्तर में इन लोगों का सम्पर्वफ पैतृक परिवार से टूट जाता है और जीवन तथा विचार के नये तरीकों को अपनाते हैं जो कि संयुक्त परिवार की भावनाओं के विरुण् तथा एकाकी परिवार के अनुकूल होते हैं।

लेकिन देसाई ने महुवा के 423 परिवारों के अपने ही अध्ययन में पाया कि शिक्षा के स्तर में वृद्धि के साथ संयुक्तता में वृद्धि तथा एकाकिता में गिरावट आई। शिक्षा के स्तर तथा संयुक्तता की सीमा का अनुपात देखने में उन्होंने पाया कि शिक्षा के लिए

संयुक्तता अनुकूल है, और शिक्षा को प्रोत्साहित करके संयुक्तता स्वयं का विघटन करती है। देसाई का मत है कि बहुत कम लोग अखबार व पुस्तके खरीदते हैं तथा लोगों के विचार एवं विश्वास समाचार पत्रों, अंग्रेजी पुस्तकों तथा पत्रिकाओं के सामान्य पठन -पाठन से या पश्चिमी शिक्षा पण्ति से सीधे प्रभावित नहीं होते हैं। शिक्षा का जो कुछ भी प्रभाव लोगों पर होता है वह उन व्यक्तियों के प्रभाव के कारण है जिन्हें हम अभिजन (elite) कह सकते हैं, और या फिर परिवार तथा विद्यालय के पर्यावरण के प्रभाव के कारण होता है। अत: परिवार के मुखिया या घर के अन्य सदस्यों की शिक्षा का स्तर नये और भिन्न प्रकार की विचाराधाराओं और विश्वासों पर प्रभाव नहीं सुझाता, अपितु यह (प्रभाव) नये विचारों वाले व्यक्तियों की प्रस्थिति एवं क्षेत्र में संचार के प्रतिरूप के कारण मिलता है। देसाई के कथन में कोई तर्वफ दिखाई नहीं देता। यह सत्य है कि परिवार से बाहर के सम्पर्वफ व्यक्ति की अभिवृनियों एवं विचारों पर प्रभाव डालते हैं परन्तु उसके स्वयं का तथा उसके परिवार जनों का शिक्षा स्तर भी उनके विश्वासों और आदर्शो में परिवर्तन के कारक होते हैं। अत: जैसा कि देसाई मानते हैं यह नहीं कहा जा सकता कि परिवार के सदस्यों की शिक्षा, परिवार की संरचना एवं संगठन में आ रहे परिवर्तनों में महत्वपूर्ण नहीं है। इसी तरह देसाई का यह निष्कर्ष कि शिक्षा के स्तर में वृद्धि के साथ संयुक्तता में वृद्धि होती है और एकाकिता (nuclearity) में कमी आती और सत्य प्रतीत नहीं होता। सम्भवत: उनका यह निष्कर्ष परिवार का शिक्षा-स्तर ज्ञात करने के लिए अनुसन्धान में उपयोग की गयी गलत पण्ति का ही पफल है। उन्होंने परिवार के न पढ़ने वाले सदस्यों (non-educants) ;यानि कि, वे वयस्क व बालिग बालक जिनके आगे पढ़ने की सम्भावना नहीं हैद्ध के औसत स्कूल जाने के समय को आधार मानकर परिवार की औसत शिक्षा की गणना की है। इस प्रकार इन सदस्यों के स्कूल जाने के कुल वर्षो को सदस्यों की संख्या से भाग देकर परिवार की औसत शिक्षा निकाली गयी। परिवार की शिक्षा का आंकलन करने की यह विधि निश्चित रूप से प्रश्न करने योग्य है। यदि वे (देसाई) अन्य विद्वानों द्वारा उपयोग की गयी विधि का प्रयोग करते तो नतीजे निश्चित ही भिन्न आते। पिफर यदि बहस के तर्वफ पर हम यह मान भी लें कि परिवार की पढ़ाई का स्तर ज्ञात करने का देसाई का तरीका सही था तो उन सभी परिवारों की, जिनके सदस्य स्नातक थे, संरचना एकाकी क्यों थी तथा एक भी परिवार संयुक्त क्यों नहीं था? यदि उच्च शिक्षा संयुक्त परिवार के प्रति अभिरुचि को बढ़ाती है तो स्नातक परिवारों में फ्मैटिंकुलेशन व उससे कम परिवारों, की तुलना में संयुक्त परिवारों की संख्या अधिक होती। अत: इन तर्को के आधार पर हम देसाई के उस सम्बन्ध को जो उन्होंने शिक्षा और पारिवारिक संरचना के मध्य बताया है, स्वीकार नहीं कर सकते। हमारी मान्यता है कि शिक्षा संयुक्त परिवार को नहीं परन्तु एकाकी परिवार की पसन्द को बढ़ाती है।

रास (1961) ने कहा है कि वर्तमान व्यवसाय इस प्रकार के हैं कि उनके लिए विशेष शिक्षा, दक्षता एवं टेंनिग की आवश्यकता होती है। अत: अपने से उपर अपने बच्चों के जीवन स्तर को उचा उठाने हेतु माता-पिता उन्हें उच्च शिक्षा देने के लिए सदा उत्सुक व महत्वाकांक्षी रहते हैं, विशेष रूप से शहरों के मध्यवर्गीय एवं उच्च वर्गीय परिवार के लोग। कुछ गरीब मां-बाप तो इतने महत्वाकांक्षी होते हैं कि वे अपने को कष्ट में डालकर बड़े से बड़ा त्याग करके अनेक दु:ख, वेदना व पीड़ा सहन करते हुए भी अपने पुत्रों को उच्चतम शिक्षा दिलाने का प्रयास करते हैं। इसके लिए कभी-कभी तो वे अपने को सुख-सुविधा से, यहां तक कि खाने पहनने से भी वंचित रखते हैं। ऐसी स्थिति में अगर उनके पुत्र परीक्षा में उनीर्ण नहीं हो पाते या अपेक्षित श्रेणी प्राप्त नहीं करते तो माता-पिता में बड़ी निराशा पैदा होती हैं। कुछ मामलों में तो मा-बाप अपने बेटों को इतना डांटते पफटकारते रहते हैं, इतनी टीका-टिप्पणी व तंग करते हैं कि वे सपफलता प्राप्त करने में ही अशक्त हो जाते हैं और बामय होकर परिवार से ही पृथक हो जाते हैं। दूसरी ओर कुछ ऐसे माता-पिता भी होते हैं जो गरीबी के कारण अपने बच्चों को उच्च शिक्षा दिलाने के लिए अधिक महत्वाकांक्षी नहीं होते, किन्तु उनके पुत्र अत्यधिक उच्चाकांक्षी होते हैं। अत: वे अपने मा!-बाप को छोड़कर शिक्षा प्राप्त करने विभिन्न शहरों और कस्बों में चले जाते हैं। अपनी जीविका कमाने के लिए वे ट्यूशन या नौकरी करते हैं। ये बच्चे धीरे-धीरे अपने पारिवारिक सूत्रों से कट जाते हैं। विवाह के बाद भी वे शहरों में अलग रहना जारी रखते हैं। इस प्रकार शिक्षा इनके परिवारों को प्रभावित करती है (रास, वही .208-231)। महिलाएं भी शिक्षा प्राप्त करने के बाद अपने पति, बच्चों व परिवार के प्रति भिन्न दृष्टिकोण अपना लेतीं हैं और अपनी रूढ़िवादी सास से संघर्ष में आकर पृथक घर में रहने की षिद करती हैं। यह सब परिवार के स्वरूप पर शिक्षा के प्रभाव को दर्शाता है। जैसे-जैसे शिक्षा का स्तर उठता है, वैसे-वैसे एकाकी परिवार के पक्ष में प्रतिशत बढ़ता जाता है और संयुक्त परिवार में जीवन व्यतीत करने ;व्यवहार मेंद्ध के पक्षधर लोगों का प्रतिशत कम होता जाता है।

नगरीकरण

परिवार को प्रभावित करने वाला एक अन्य कारक नगरीकरण भी है। गत कुछ दशकों में हमारे देश की शहरी जनसंख्या में तीव्र दर से वृद्धि हुई है। अठारवीं शताब्दी के मध्य में भारत की लगभग 10% जनसंख्या ही शहरों में रहती थी। उन्नीसवीं शताब्दी में, 100 वर्षो के अन्तराल में भारत में शहरों की जनसंख्या में दस गुणा वृद्धि हुई। बीसवीं शताब्दी में समूचे देश की जनसंख्या 1901 में 23.8 करोड़ से बढ़कर 1991 में 84.63 करोड़ हो गई, शहरों में रहने वालों की संख्या में 523.0% वृद्धि हुई। 1961 में शहरी जनसंख्या समूची जनसंख्या की 17.9≫ थी, किन्तु 1971 में बढ़कर 19.9%, 1981 में बढ़कर 23.34% तथा 1991 में बढ़कर 25.72% हो गई। शहरी जनसंख्या का एक दशक के हिसाब से वृद्धि दर 1961 में 26.41: था जो 1971 में 38.23%, 1981 में 46-14% तथा 1991 में 36.19% हो गया। यथार्थ में, भारत की शहरी जनसंख्या 1961 में 7.8 करोड़, 1971 में 10.9 करोड़, 1981 में 15.9 करोड़, तथा 1991 में 21.7 करोड़ हो गई।

नगरीय परिवार ग्रामीण परिवारों से न केवल संरचना में बल्कि विचारधारा में भी भिन्न होते हैं। यह पहले ही कहा जा चुका है कि शहरी क्षेत्रों में एकाकी परिवार, गैर-शहरी एकाकी परिवार से अपेक्षाछत छोटा होता है और शहर में रहने वाला व्यक्ति एकाकी परिवार का चयन अधिक रहता है, अपेक्षाछत ग्रामवासी के। एम.एस. गोरे (1968) की मान्यता है कि नगरीय परिवार अपने दृष्टिकोण, भूमिका-परिप्रेक्ष्य तथा व्यवहार में संयुक्त परिवार के मानदण्डों (norms) से हट रहे हैं। उदाहरणार्थ, निर्णय लेने के मामले में ग्रामीण परिवारों के विपरीत नगरीय परिवारों में बच्चों से संबंधित निर्णय परिवार का सबसे बुजुर्ग व्यक्ति ही नहीं परन्तु उनके माता-पिता लेते हैं। इसी प्रकार वे शहरी लोग जो माता-पिता की मृत्यु के उपरान्त भाईयों के इकट्ठे रहने के विचार का समर्थन करते हैं, उनकी संख्या उसी विचार वाले ग्रामीण लोगों से कम है। आई.पी. देसाई (1964) इस विचार से सहमत नहीं है कि नगरीकरण संयुक्त परिवार व्यवस्था के विघटन के लिए उत्तरदायी है। संयुक्तता पर नगरीकरण के प्रभाव का विश्लेषण करते हुए उन्होंने पाया कि परम्परागत संयुक्तता तथा शहरी क्षेत्र में परिवार के रहने की अवधि के बीच महत्वपूर्ण सम्बन्ध है। उनका अनुमान था कि शहरी क्षेत्र में परिवार जितनी लम्बी अवधि तक ठहरेगा, संयुक्तता की मात्रा में भी उतनी कमी आयेगी। परन्तु उन्होंने पाया कि बहुत पुराने (50 या अधिक वर्षो तक शहर में रहने वाले) और पुराने (25 से 50 वर्षो तक शहर में रहने वाले) परिवारों में नये परिवारों (25 या इससे कम वर्ष तक शहर में रहने वाले) की अपेक्षा संयुक्तता अधिक मिलती है।

लुई विर्थ (Louis Wirth, 1938) का भी यही विचार है कि नगर परम्परागत पारिवारिक जीवन के लिए सहायक नहीं है। उनका कहना है कि सामाजिक जीवन के इकाई के रूप में (नगरीय) परिवार बड़े नातेदारी समूह से मुक्त है, जो कि गांव की विशेषता है, तथा व्यक्तिगत रूप में (नगरीय परिवार का) सदस्य अपनी स्वयं की शैक्षिक, व्यावसायिक, धार्मिक, मनोरंजन सम्बन्धी तथा राजनैतिक आकांक्षाओं की पूर्ति में लगा रहता है।

हमारा विचार है कि परिवार व्यवस्था के परिवर्तन में नगरीकरण का विशेष महन्व है। शहरी जीवन संयुक्त परिवार के स्वरूप को कमजोर बनाता है तथा एकाकी परिवारों को दृढ़ बनाता है। नगरों में उच्च शिक्षा व नये व्यवसायों के चुनने के लिए अधिक अवसर होते हैं। वे लोग जो अपने परिवार के परम्परागत व्यवसाय को छोड़कर नये व्यवसाय अपनाते हैं अपने विचारों और अभिवृनियों में उन लोगों की अपेक्षा बड़ा परिवर्तन दर्शाते हैं जो अपने परम्परागत व्यवसाय को नहीं छोड़ते। इसी प्रकार, शहरों में शिक्षित व्यक्ति यद्यपि संयुक्त परिवार के मानदंडों का थोड़ा बहुत पालन करता है परन्तु उनके पक्ष में कम होता है। परन्तु यह कहा जा सकता है कि प्रवृनियों में परिवर्तन तथा शहर में रहने की अवधि में निकट का सम्बन्ध है। शहर में स्त्रियों को भी नौकरी के अधिक अवसर मिल जाते हैं और जब वे धन अर्जन करने लगती है तब वे कई क्षेत्रों में स्वतंत्रता चाहती हैं। वे अपने

पति के जनक परिवार (family of orientation) से मुक्त होने की अधि क प्रयत्न करने लगती हैं। इस प्रकार नगर में रहने के कारण और समाज में परिवार के स्वरूप में एक भिन्नता दिखाई पड़ती हैं।

औद्योगीकरण

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तथा बीसवीं शताब्दी के प्रथम में भारत में औद्योगीकरण प्रारम्भ हो गया था। नये उद्योगों के चारों ओर शहरों का विकास हुआ। औद्योगीकरण से पूर्व हमारे पास यह व्यवस्था थी-(i) कृषिक अमुद्राहीन अर्थव्यवस्था (ii) तकनीकी का वह स्तर जहां घरेलू इकाई आर्थिक विनिमय की इकाई भी थी, (iii) पिता-पुत्र व भाई-भाई के बीच व्यावसायिक भेद नहीं था, (iv) एक ऐसी मूल्य व्यवस्था थी जहां युक्तिसंगतता (v) के मानदंड की अपेक्षा बुजुर्गो का सत्ता और परम्पराओं की पवित्रता दोनों को ही महत्व दिया जाता था। लेकिन औद्योगीकरण ने हमारे समाज में सामान्य रूप से आर्थिक व सामाजिक -सांस्छतिक परिवर्तन तथा विशेष रूप से परिवार में परिवर्तन किया है। आर्थिक क्षेत्र में इसके ये परिणाम हुए हैं-कार्य विशेषज्ञता, व्यावसायिक गतिशीलता, अर्थ व्यवस्था का द्रव्यीकरण तथा व्यावसायिक संरचनाओं व नातेदारी के बीच के सम्बन्धों का टूट जाना। सामाजिक क्षेत्र में इसका परिणाम हुआ है-ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में आगमन, शिक्षा का प्रसार और एक मजबूत राजनैतिक ढाचा। सांस्छतिक क्षेत्र से इससे (औद्योगीकरण से) धर्म निरपेक्षता के विचार का विकास हुआ है।

पारिवारिक संगठन पर औद्योगीकरण के जो तीन मुख्य प्रभाव हुए हैं, वे हैं (1) परिवार जो कि उत्पादन की एक प्रधान इकाई थी, अब उपभोग की इकाई के रूप में बदल गया है। एक एकीछत आर्थिक व्यवस्था में लगे परिवार के सभी सदस्यों के एक साथ काम करने की बजाय, परिवार के कुछ पुरुष सदस्य परिवार की जीविका चलाने के लिए बाहर चले जाते हैं। इससे न केवल संयुक्त परिवार का परम्परागत स्वरूप ही प्रभावित हुआ है, बल्कि सदस्यों के बीच के सम्बन्ध भी। (2) पैफक्टिंयों में नौकरी के कारण युवक अपने पैतृक परिवारों पर सीधे निर्भर नहीं रहते। वेतन मिलने से क्योंकि वे आर्थिक रूप से स्वतंत्र हैं, अत: परिवार के मुखिया की सत्ता: में और भी कमी आई है। शहरों में तो पुरुषों के साथ-साथ उनकी पत्नियों ने भी धन अर्जन करना शुरू कर दिया है। इससे अन्त: पारिवारिक सम्बन्धों पर प्रभाव पड़ा है। (3) बच्चे अब आर्थिक रूप से आस्ति न होकर देय (liability) बन गये हैं। यद्यपि वैधानिक दृष्टि से बाल-श्रम वर्जित है, पिफर भी बच्चों की श्रमिकों के रूप में नियुक्ति तथा उनके साथ दुर्व्यवहार में वृद्धि हुई है। साथ ही शिक्षा की बढ़ती हुई आवश्यकता को देखते हुए माता-पिता पर निर्भरता में वृद्धि हुई है। शहरों में आवास महंगा है और बच्चों की देखभाल भी समय मांगती है। अत: औद्योगीकरण के कारण कार्य और घर एक-दूसरे से पृथक हो गये हैं।

कुछ समाजशास्त्रियों ने औद्योगीकरण के कारण एकांकी परिवार के उदय के सिणन्त को हाल ही में चुनौती दी है। यह चुनौती अनुभवाश्रित (empirical) अध्ययनों पर आधारित है। एम.एस.ऐ. राव एम.एस.गोरे तथा मिल्टन ¯सगर जैसे विद्वानों के अध्ययन यह प्रकट करते हैं कि संयुक्तता को व्यापारिक समुदायों में अिमाक वरीयता दी जाती है और यह प्रचलित भी है और बहुत से एकाकी परिवार नातेदारी के बन्धनों को भी बहुत विस्तृत रूप से सुरक्षित रखते हैं। पश्चिम के औद्योगिक क्षेत्रों के अनेक अध्ययन इस बात पर बल देते हैं कि नातेदारों की एक समर्थनकारी भूमिका होती है और ये परिवार और अपैसक्तिक (impersonal) वृहत विश्व के बीच एक मध्यवर्ती (buffer) का कार्य करते हैं (Abbi : 1970)। सामाजिक इतिहासकारों ने भी बताया है कि औद्योगीकरण से पूर्व भी अमेरिका व यूरोप में एकाकी परिवार सांस्छतिक मानदण्ड के रूप में प्रचलित था। लेकिन यह मयान देने योग्य है कि नातेदारों की समर्थनकारी भूमिका का कोई अनिवार्य लक्षण नहीं है जो कि भारतीय एकाकी परिवारों में एक पारिवारिक कर्तव्य के रूप में पाया जाता है। एकाकी परिवार के युवा सदस्य स्वेच्छा से अपने प्राथमिक नातेदारों ;जैसे माता-पिता व भाइयोंद्ध के प्रति अपना उत्तरदायित्व निभाते हैं तथा नजदीकी रिश्तेदारों से निकटता व परिवार में एकता की भावना प्रकट करते हैं, भले ही वे अलग घरों में रहते हों (Leela Dube, 1974 : 311)।

इन सभी परिवर्तनों ने हमारी परिवार व्यवस्था को बहुत बदला है। गा!व से शहर की ओर जनसंख्या के प्रवाह के कारण सत्तावादी अधिकार में कमी और धर्मनिरपेक्षता में वृद्धि ने एक ऐसी मूल्य-व्यवस्था का विकास किया है जो कि व्यक्ति में पहल व उपक्रम और उत्तरदायित्व पर बल देती है। अब व्यक्ति प्रतिबंधात्मक पारिवारिक नियंत्रण के बिना ही कार्य करता है। पहले जब व्यक्ति परिवार में काम करता था तथा परिवार के सभी सदस्य उसकी सहायता करते थे, तब परिवार के सदस्यों के बीच अधिक आत्मीयता थी, लेकिन आज जब कि वह परिवार से दूर पैफक्टीं में काम करता है तो आत्मीय सम्बन्धों को बुरी तरह आघात लगा है। पारिवारिक सम्बन्धों के स्वरूप पर औद्योगीकरण के प्रभाव को इस आधार पर भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि परिवार की आत्म-निर्भरता में कमी आई है और परिवार के प्रति दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया है। औद्योगीकरण ने एक नई सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक व्यवस्थापन को जन्म दिया है जिसमें प्राधि कारवादी परिवारवादी संगठन (authoritarian familistic organisation) वाले पूर्व के संयुक्त परिवार को बनाए रखना कठिन हो गया है।

विवाह व्यवस्था में परिवर्तन

हमारी परिवार व्यवस्था को विवाह की आयु में परिवर्तन, जीवन-साथी चुनाव की स्वतंत्रता तथा विवाह के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन ने भी प्रभावित किया है। जो बच्चे देर से विवाह करते हैं वे न तो अपने माता-पिता की सत्ता को मानते हैं और न ही सबसे बड़ी आयु के पुरुष को निर्णय लेने वाला मुख्य व्यक्ति समझते हैं। जीवन-साथी के चुनाव की स्वतंत्रता ने अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित किया है जिससे पारिवारिक सम्बन्धों की संरचना प्रभावित हुई है। इसी प्रकार जब विवाह धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं रहा है तथा वैवाहिक सम्बन्धों को विच्छेद की वैमाानिक स्वीकृति मिल चुकी है, पति के अधिकार की प्रतीक परिवार की सुसंगठित सत्ता कमजोर हो गई है।

वैधानिक उपाय

वैधानिक उपायों का भी परिवार के स्वरूप पर प्रभाव पड़ा है। बाल-विवाह निषेध तथा बाल-विवाह निवारक अधिनियम, 1929 के द्वारा कम से कम विवाह की आयु का निर्धारण एवं हिन्दू विवाह अधिनियम 1955, ने शिक्षा की अवधि को बढ़ाया है और विवाह के बाद युगल (couple) के नयी परिस्थितियों में सामंजस्य को योगदान किया है। जीवन-साथी के चुनाव की स्वतंत्रता, किसी भी जाति व धर्म में माता-पिता की सहमति बिना विवाह, जिसे विशेष विवाह अधिनियम, 1954 के अन्तर्गत अनुमति प्रदान की गयी है, विधवा विवाह अधिनियम, 1856 द्वारा विधवा पुनर्विवाह की अनुमति, हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के अनुसार विवाह-विच्छेद की अनुमति, तथा हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत पुत्रियों को माता-पिता की सम्पत्ति में हिस्साμइन सभी अधिनियमों ने न केवल अन्र्तव्यक्ति सम्बन्धों एवं परिवार संरचना को बल्कि संयुक्त परिवार की स्थिरता को भी प्रभावित किया है।

परिवार की संरचना एवं कार्य

परिवार की संरचना का प्रमुख आधार एक स्त्री और पुरुष के बीच के संबंध है जो विवाह द्वारा पति-पत्नी के संबंधों में बदल जाते हैं। परिवार की संरचना का दूसरा आधार परिवार के बच्चे हैं। संरचना का एक तीसरा आधार सामान्य निवास स्थान या घर है। इस भांति पति-पत्नी, बच्चे और सामान्य निवास परिवार की संरचना को बनाते है। इन तीन तत्वों से मिलकर साधारणतया केन्द्रीय परिवार की संरचना होती है। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि ‘‘परिवार की संरचना का सम्बन्ध आर्थिक व्यवस्था से भी है। आज की नगरीय और औद्योगिक व्यवस्था पर इससे सम्बन्धित व्यवसाय पद्धति ने एकाकी तथा वैयक्तिक परिवार की संरचना को प्रोत्साहित किया है। जनजातीय, कृषक और ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में जहां परिवार आज भी उत्पादन की इकाई है – ज्यादातर सम्मिलित, विस्तृत तथा संयुक्त माता-पिता, पति के भाई तथा उनकी पत्नियां तथा बच्चे भी साथ रहते

है। भारत की संयुक्त परिवार की प्रणाली इस तरह के परिवार का सर्वोत्तम उदाहरण है। परिवार की सरंचना मात्र इसके समूहगत स्वरूप, जिसमें पति-पत्नी, बच्चे तथा उनके संबंधी रहते हैं, से ही नहीं समझी जा सकती। परिवार एक संस्था के रूप में भावनात्मक सम्बन्धों, सामाजिक मूल्यों, रीति-रिवाजों तथा परम्पराओं से भी मिलकर बनता है। ये तत्व परिववार को स्थायित्व और निरन्तरता प्रदान करते हैं। इस दृष्टि से पारिवारिक संरचना का एक प्रमुख तत्व पारिवारिक, आर्थिक एवं जीवन-यापन के साधन भी है।''

केन्द्रीय परिवार की संरचना

जिस प्रकार विवाव सर्वत्र पाया जाता है, वैसे ही केन्द्रीय परिवार भी। कई बार केन्द्रीय परिवार अन्य विस्तारित और जटिल परिवारों की संरचना भी करता है। केन्द्रीय परिवार की बहुत बड़ी विशेषता निकटाभिगमन निषेध है। प्रत्येक विवाहित व्यक्ति कम से कम दो केन्द्रीय परिवारों का सदस्य होता है। एक वह जिसमें कि वह जन्मा है, यह उसके जन्म का परिवार यान प्रशिक्षण का परिवावर है। इसी परिवार में उसे जीवन बिताने की शिक्षा-दीक्षा दी जाती है।